6. सीखने और सिखाने की कला

(The Art of Learning and Teaching)

वास्तव में मनुष्य जीवन-भर एक विद्यार्थी है परन्तु गिनती-भर लोग होंगे जो जीवन-भर कुछ-न-कुछ सीखने का लक्ष्य अपने सामने रखते होंगे। बहुत लोगों के सीखने की गति अत्यन्त मन्द होती है क्योंकि वे अपनी अल्पविद्या के अभिमान में चूर होते हैं अथवा अधिकाधिक सीखकर आगे बढ़ने का शौक उन्हें नहीं होता, उनका जीवन विकास की ओर नहीं, ह्रास की ओर जाता है, जीवन को भोगने में लगे हुए ऐसे भोगी लोग एक दिन स्वयं ही भोगे जाते हैं।

इसी प्रकार, मनुष्य जाने-अनजाने दूसरों को कुछ-न-कुछ सिखाता भी रहता है। मनुष्य जब घर में अपनी पत्नी से क्रोध करता है और उस पर हाथ उठाता है तब क्या उसके घर के नन्हें-मुन्ने बच्चे उसकी इस हरकत को नहीं सीखते? क्या वे कोमल-कोमल कलियाँ उसके इस रंग को नहीं पकड़तीं? इसी प्रकार, मनुष्य नहीं जानता परन्तु यह सत्य बात है कि उसकी चाल को, उसकी पोशाक को, उसकी हर बात को, उसके व्यवहार और आचार को उसके आसपास के लोग देखते और उससे प्रभावित होते हैं और अनजाने से सीखते भी हैं। इतना ही नहीं उसके हर हाव-भाव का प्रभाव समूचे विश्व के वातावरण पर पड़ता है क्योंकि यह एक वैज्ञानिक नियम है कि प्रत्येक क्षीण क्रिया की भी एक प्रतिक्रिया होती है और वह प्रतिक्रिया एक क्रिया का रूप धारण करके एक अन्य प्रतिक्रिया को जन्म देती है और इस प्रकार क्रिया-प्रतिक्रिया का एक अनन्त, यद्यपि अदृश्य सिलसिला शुरू हो जाता है जोकि सारे संसार में तरंगों के रूप में संचारित और प्रसारित होकर कण-कण पर और हर मन पर, चाहे अत्यन्त अमाप्य ही सही, प्रभाव अवश्य डालता है। योगी कर्म की इस गहन गति को जानते हुए अपने कर्म के बारे में सतर्क, सचेत, उद्‌बुद्ध रहता है ताकि उसके किसी अमर्यादित या ग़लत कार्य से कोई उल्टी प्रेरणा न ले ले और उनके पतन का दोष कहीं उसके सिर पर न चढ़े। दूसरे शब्दों में यों कहें कि वह सदा लोक-संग्रह का ख्याल रखता है।

विचार करने पर आप इसी निर्णय पर पहुँचेंगे कि सीखने और सिखाने की कला के लिए मुख्य रूप से छः बातों का होना आवश्यक है— (1) गुणग्राहक वृत्ति (2) निरहंकारिता (3) सीखने की उत्कट इच्छा और यह भावना कि अभी मुझे बहुत सीखने की आवश्यकता है (4) दूसरों को सिखाने के लिए एक तो मनुष्य में ऊँच-नीच की भावना नहीं होनी चाहिये (5) उसमें दूसरों को परखने की शक्ति होनी चाहिये (6) उन्हें जिस बात की शिक्षा देनी है वह बात प्रैक्टिकल करके दिखानी चाहिये और उन्हें निश्चय कराने की क्षमता होनी चाहिये एवं उनसे स्नेह तथा उन्हें अपने समान अथवा अपने से भी ऊँचा बनाने की भावना होनी चाहिये और उस कार्य के लिए मनोबल (Will Power) होना चाहिये।

अब यह समझना तो सहज ही है कि गुणग्राहक वृत्ति और निरहंकारिता उस ही में हो सकती है जो प्रभु के गुणों का मनन-चिन्तन करता हो और देह को भूलकर आत्मिक स्थिति में रहता हो। सदा सीखने की उत्कट इच्छा और विद्या की प्राप्ति के लिए सतत् प्रयत्न भी उस ही में हो सकता है जिसका गुरु व शिक्षक परमपिता परमात्मा हो, जो अतीव विनम्र हो, मधुर हो और दूसरों का ज्ञान ख़ज़ाना प्राप्त करने में चतुर हो। परन्तु उसकी यह इच्छा और यह प्रयत्न सफल तभी हो सकता है जब वह उस शिक्षा को अपने जीवन में धारण करने वाला हो और यह धारणा तो योग ही का एक अंग है, धारणा वाली बुद्धि भी योग ही से बनती है।

दूसरों के प्रति शुभभाव, उनसे स्नेह, उनको पढ़ाकर अपने से भी ऊँचा बनाने की ईर्ष्या-रहित भावना, उनकी कमियों को घृणा-रहित भाव से दूर करने के लिए अपार मनोबल, ये सब भी 'योग कला' द्वारा ही मनुष्य को सिद्ध होते हैं। यदि मनुष्य में दूसरों को विद्या-प्रवीण बनाने के लिए अटूट मनोबल न हो तो वह उन्हें पूरी रीति सिखा नहीं पायेगा। यदि वह उनके सामर्थ्य का पारखी न हो तो भी वह उन्हें पूरी तरह से लाभान्वित नहीं कर सकता।

यदि वह स्नेह से उनके हृदय को जीतने के बजाय उन्हें डाँटता-डपटता और कोसता रहे तो भी वह अपने शाप-तुल्य व्यवहार से उनकी बुद्धि को कुंठित कर डालता है। परन्तु दूसरों को ज्ञान देने की उदार भावना, उनके प्रति स्नेह और अनुग्रह की दृष्टि और सीखने वालों के प्रति आदर— ये जो अनमोल रत्न हैं, योग द्वारा ही मनुष्य को उपलब्ध होते हैं।

इसी प्रकार, जिस मनुष्य के मन में ये भाव ही न हो कि अभी सीखने के लिए काफ़ी गुंजाइश है और जो अपने से बड़े व्यक्तियों का आदर न करता हो, सेवा-भाव से, निरहंकारिता से, सरल मनसा से और मधुरता से विद्या-धन लेने की युक्ति से रहित हो, वह मनहूस विद्या प्राप्ति का सौभाग्य कैसे प्राप्त कर सकता है और यह युक्ति बिना योग के कैसे प्राप्त हो सकती है?

***